बोले भाई शादी नहीं करना चाहती थी। वह इस जबरन विवाह से बचने की कई नाकामयाब कोशिशें करती है पर व्यर्थता ही हाथ लगती है। चूंकि कथावाचक पुरुष पात्र का पक्षधर है इसीलिए पानेशै के साथ हुए इस अन्याय के प्रति वह मौन है। पानेशै की मनः स्थिति क्या थी, जबर्दस्ती से बांधे गए इस रिश्तें में वह कितनी तड़पी होगी इसका लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। कहानी का अंत भी पक्षपाती ढंग से यह कहकर कर दिया गया है कि विवाह पश्चात पानेशै और उसके पति ने सुखी दाम्पत्य जीवन का निर्वाह किया। सुख और संतुष्टि तो पुरुष पात्र को अपनी इच्छा-पूर्ति से मिली होगी लेकिन इस बेमेल विवाह में कैद पानेशै क्या सच में सुखी होगी यह विचारयोग्य है।

चर्चित लोककथाएँ पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करती हैं। स्त्री की पुरुषाश्रित, डब्बू, दैवीय अतिवादी स्वरूप का गुण-गान ही इन कथाओं में प्रत्यक्ष होता है तथा कथाओं के निर्मिति के पीछे क्रियाशील तत्कालीन सामाजिक संरचना का संकेत मिलता है। स्त्री की अधीनस्थ भूमिका केवल असमिया समाज की ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय समाज की सच्चाई है। बहुपत्नीत्व, घरेलू हिंसा आम जीवन का हिस्सा था। लेकिन वर्तमान समय में स्त्री की भूमिका परिवर्तित हुई है। स्वलम्बी, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, स्वतंत्र व्यक्तित्व सम्पन्न स्त्री, समाधिकार के लिए संघर्षरत है। इसीलिए यह प्रश्न विचारयोग्य है कि क्या आज भी स्त्री संबंधी ऐसे प्रतिगामी अवधारणा समाज में दोहराए जाने चाहिए? क्या ये शिशु के कोमल मन-मस्तिष्क को कुप्रभावित नहीं करेगा? क्या इन कथाओं में नए प्रसंगों को जोड़ने की आवश्यकता तो नहीं है ताकि प्रासंगिकता बनी रहे। यह सच है कि इन कथाओं के जरिए सत्य का असत्य पर, अन्याय पर न्याय के विजय की सीख दी जाती है लेकिन क्या नैतिक शिक्षा देने हेतु स्त्री के साथ अन्याय, हिंसा, स्त्री पात्रों के प्रति हेय भावना का सामान्यीकरण करना संगत होगा? इन लोककथाओं में किया गया स्त्री चित्रण तत्कालीन सामाजिक संरचना का देन है। लेकिन इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री की सामाजिक स्थिति में बदलाव आ रहे हैं, सामाजिक संरचना कुछ हद तक परिवर्तित हुई है और अभी भी काफी सुधार अपेक्षित हैं। अतएव वर्तमान समय स्त्री भावनाओं को आहत न करते हुए लिंग आधारित भेदभाव का अतिक्रमण कर मानवीय गुणों की श्रीवृद्धि करनेवाले कथाओं की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. बेजबरुवा, ल. (2011). बूढ़ी आइर साधु. अकनीर प्रिय बंधु 60.
2. यादव, रा, (2007). आदमी का निगाह में औरत. राजकमल प्रकाशन, 16
3. अनामिका (2017) स्त्री विमर्श का लोकपक्ष वाणी प्रकाशन

6:07 40%
Anahad-lok-222_me...

स्त्री से यह अपेक्षित था कि वह अन्याय को भी प्रसन्नचित सहन करे, पतियों के साथ देवर की भी जी-हजूरी करे। यही आदर्श स्थिति होती है और आदर्श स्त्री का गुण भी। पर ये स्त्री पात्र इस अन्याय का विरोध करती हैं इसीलिए कथावाचक की दृष्टि में वे अपराधी हैं। परिणामस्वरूप पाठक के समक्ष खलनायिका के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।

अपराध के बदले दण्ड देना न्याय है लेकिन अपराध से बढ़कर दण्ड तो कानून भी नहीं देता। परंतु चर्चित लोककथाओं के वातायन में पुरुष पात्र सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिकार सम्पन्न है। उसे मन-मर्जी करने की छुट है तो दूसरी ओर स्त्री पात्र अधिकारहित होकर सामाजिक-पारिवारिक कर्तव्यों को ढोये जाने के लिए मजबूर है। जब तक पत्नियाँ पति की प्रसन्नता का कारण बनी रहें तब तक सुरक्षित हैं। लेकिन अगर पति उनसे उब जाए तो उनका जीना दुश्वार हो जाता है। दंडस्वरूप वे पति द्वारा बेघर हो सकती हैं। क्योंकि स्त्री का अपना कोई घर नहीं होता, या तो ससुराल होता है या तो मायका होता है। दोनों की घरों की श्री वृद्धि के लिए स्त्री खुद होम होती है। ससुराल और मायके की संपन्नता उसकी दिली ख्वाहिश भी हैं और कर्तव्य भी पर उस पर अधिकार उसका नहीं है। पति का पत्नी पर मालिकाना हक़ है। वह चाहे तो उस पर प्रहार कर सकता है अथवा मृत्युदंड भी दे सकता है। चर्चित लोककथाओं में इस कथ्य के कई निदर्शन प्राप्त होते हैं। 'तुला और तेजा', 'चिलनीर जियेकर साधु' में 'लागी' पत्नी के विरोध प्रपंच करती स्त्री पात्रों से रुष्ट पति उन्हें मृत्युदंड देता है। गलती चाहे स्त्री-पुरुष दोनों पक्षों द्वारा हुई हो, सजा की हकदार सिर्फ स्त्री ही होती है, पुरुष तो बाइज़्ज़त बरी हो जाता है। 'मेकुरीर जियेकर साधु' की कहानी में व्यापारी अपनी कनिष्ठ पत्नी से अथाह प्रेम करता है लेकिन उसी पत्नी के गर्भ से संतान के स्थान पर कद्दू जन्मने की झूठी खबर मिलते ही अलक्ष्मी मानकर उसका परित्याग करता है। सालों बाद जब सच्चाई का पता चलता है तो बड़े ही आराम से बिना किसी अपराधबोध के ज्येष्ठ पत्नियों को अपमानित कर, उनका नाक-कान काटकर घर से बेघर करता है और खुद कनिष्ठ पत्नी और बेटों के साथ सुखी जीवन बिताता है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि पत्नियों से अपराध हुई लेकिन क्या उनका पति पूर्णतः निर्दोष था? क्या उसके प्रेम में ही खोट नहीं था? कि जिसस प्रेम का दावा किया, सुनी-सुनाई बातों में आकर उसी को भीषण पीड़ा और गरीबी के बीच धकेल दिया?

भारतीय समाज में प्रचलित अनेक लोक कथाओं में स्त्री एक अबला के रूप में चित्रित है जिसे संरक्षण की आवश्यकता है, जो उसे कोई राजकुमार या कोई सदपुरुष द्वारा मिलता है। चर्चित लोककथाओं में भी स्त्री की इस पुरुषाश्रित छवि का चित्रण है। 'तेजा और तुला', 'मेकुरीर जियेकर साधु', 'चिलनीर जियेकर साधु', 'चंपावती' आदि कहानियों में नायिका को दरिद्रता, पीड़ा, विमाता की क्रूरता से मुक्ति पुरुष द्वारा मिलती है। उससे विवाह कर अपार धन-ऐश्वर्य की मालकिन बनाता है। स्त्री का उद्धार भी पुरुष द्वारा ही संभव दिखाया गया है। इसमें इतना सामर्थ्य कहाँ कि स्वयं खुद की सहायता कर सके, मुक्ति की राह ढूंढ सके। स्त्री की पुरुष निर्भरता में ही पितृसत्ता का नींव खड़ा है।

बड़ो के प्रति श्रद्धा, उनका आज्ञापालन प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। लेकिन अक्सर सारी नैतिक जिम्मेदारियों का बोझ स्त्री को ढोना पड़ता है। चर्चित लोककथाओं में भी आज्ञाकारिता स्त्री पात्रों से ही अपेक्षित हैं। वे बड़ों की प्रत्येक उचित-अनुचित आज्ञा का पालन करती हैं तो दूसरी ओर पुरुष पात्रों को हठ करने की, अधिकार मांगने की छुट है। 'औ कुँवरी', 'पानेशै' आदि कथाओं में पुरुष पात्र मन-पसंद की कन्या से विवाह करने की हठ करते हैं और उनकी जिद-पूर्ति भी होती है। परंतु स्त्री की इच्छा-आकांक्षाओं की गला घोंट दी जाती है और अंततः वे पुरुष की जिद, लोभ, कामना का शिकार बन जाती है। पानेशै अपने मुंह-

अपनी सातों पत्नियों से की हो। अन्य सभी लोक कथाओं की भांति 'चील की बेटी' कथा में भी सौतन बनी स्त्रियाँ आपसी ईर्ष्या में पति प्रेम पर एकाधिकार हासिल करने हेतु नायिका के विरुद्ध प्रपंच रचती हैं। क्योंकि उनके लिए पति का प्रेम और साथ उनके अस्तित्व से जुड़ा है। पति द्वारा अस्वीकृत स्त्री सम्पूर्ण समाज के लिए ताज्या बन जाती थी। पति मालिक है, अन्नदाता है। उसे प्रसन्न रखना, उसकी छत्र छाया में रहना ही स्त्री का ध्येय था। स्त्रियों की मध्य जन्मी इस आपसी तनाव में पुरुष की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत कथा में सौदागर अपनी सभी पत्नियों से कपड़ा बुनने का आदेश देकर यह परखना चाहता है कि किसकी बुनाई बेहतर है। वैसे तो बिहू प्रेम और उल्लास का उत्सव है लेकिन सौदागर पत्नियों के मध्य प्रतियोगिता का माहोल पैदा कर इसे विषाक्त कर डालता है। यदि वह सभी पत्नियों की प्रशंसा करता तो उनकी परस्पर ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा को अधिक बढ़ावा नहीं मिलता।

स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को समाज ने सदेव नकारा है। पुरुषसत्ता ने ऐसी गाय-सी स्त्री का आदर्श समाज में रखा है जिसका सिर हिले तो हामी में। स्त्री दया, ममता, क्षमा, त्याग की मूरत है। स्त्री ऐसी हो जिसकी अपनी कोई भावना नहीं, इच्छा नहीं, स्वतंत्र सोच नहीं। वह इंसानी मशीन है जिसे पुरुषसत्ता की इशारों पर ही चलना है। वह निष्क्रिय हो, उसके विचार भी निष्क्रिय हो, घर-आँगन तक ही उसकी दुनिया सीमित हो, इन्हीं शर्तों पर स्त्री प्रशंसनीय है, सम्मानित है। जैसे ही वह इन मायनों से दूर हटती है, ताड़न की अधिकारिणी बनती है। इस संदर्भ में राजेंद्र यादव लिखते हैं – 'वे पुशंचली, कुलटा, छिनाल, रंडी, पतिता इत्यादि के नाम से सजा की अधिकारिणी हुई। इस स्वतंत्रता की सजा मौत थी...पुराने राजघराने की सारी जालसाज हलचलों में कोइ-न-कोई कुटनी, वेश्या या ऐसी ही औरत मौजूद थी। अनजानी प्रतिहिंसा से परिचालित वे 'घरों' और गृहस्थों का नाश करती हैं। हमारी सारी लोककथाएँ और पुरानी कहानियाँ इन्हीं कुटनियों, छिनालों, नायिकाओं और वेश्याओं से गति और रंगीनी पाती हैं'। चर्चित लोककथाओं में भी उन्हीं स्त्रियों के साथ कथावाचक की हमदर्दी दिखती है जो शर्मीली, शांत और दब्बू है। 'कांचनी' में कांचनी माता-पिता के आज्ञानुसार कुत्ते से और 'चंपावती' में चंपावती अजगर से विवाह कर लेती हैं। ये पात्र उन पर थोपे गए इन अन्यायपूर्ण निर्णय का विरोध कर सकती थीं, घर से भाग सकती थीं या फिर अन्य कोई रास्ता अख्तियार करती पर निराशाजनक रूप से झूठे आदर्शों की बली चढ़ती हैं। विवाहोपरांत कुत्ता और अजगर दोनों को रूपवान युवकों में परिवर्तित कर कांचनी और चंपावती के सुखी दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है क्योंकि कथावाचक को इन पात्रों के निरर्थक आज्ञाकारिता को सही साबित कर उनका महिमामंडन करना था। ताकि स्त्रियाँ भी इसी परंपरा का निर्वाह करे। निर्विवाद रूप से आदर्श के ओट में पुरुषसत्ता की वर्चस्व को स्वीकार कर खुद की तिलांजलि देती रहें। दूसरी ओर 'चिलनीर जियेकर साधु', 'मेकुरीर जियेकर साधु', 'तेजा और तुला' में जो स्त्री पात्र पति की पुनर्विवाह को नहीं स्वीकारतीं, वें खलनायिका के रूप में चित्रित हैं। क्योंकि दासी की भांति पति की आज्ञा का पालन ही आदर्श पत्नी का धर्म होता है। जो स्त्री इस पतिव्रत का पालन नहीं करती वह बिगड़ेल है, पतित है, समाज और पाठक की घृणा की अधिकारिणी है।

प्राचीन असमिया समाज में स्त्री का कार्यक्षेत्र घर-आँगन तक ही सीमित था। समाज और बाहरी कार्यक्षेत्र में पुरुष का वर्चस्व कायम था ही, गृहस्थी पर भी किसी ओर का हस्तक्षेप को भला स्त्री कैसे सहन करे। लेकिन फिर भी अपने अधिकार की रक्षा के लिए संघर्ष करती स्त्री की नकारात्मक छवि प्रस्तुत की गई है। 'कांचनी' कहानी में छह भाई गृहस्थी चलाने का अधिकार अपने कनिष्ठ भाई को सौंपते हैं। भाभियों को अपने ही घर में एक-एक चीज का हिसाब देवर को देना पड़ता है। यहाँ तक कि भिखारी को भिक्षा देने तक का अधिकार उनके पास नहीं था। चूंकि समाज पितृसत्तात्मक था इसीलिए

कहानी की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए अधिक चरित्र जुड़ते हैं, नया अंश जोड़ा जाता है इसीलिए एक ही कथा के भिन्न-भिन्न संस्करण प्राप्त होते हैं। अतएव शोध की प्रामाणिकता को बरकरार रखने हेतु असम के प्रसिद्ध साहित्यकार लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा द्वारा संकलित घर-घर में पढ़ी-सुनाई जानेवाली जनप्रिय लोककथाओं का संग्रह 'बूढ़ी आइर साधु' को इस शोध पत्र का आधार बनाया गया है ताकि कोई संदेह या भ्रम उत्पन्न न हो।

असमिया स्त्री केन्द्रित लोककथाओं में प्रायः 'लागी' अर्थात पति की चहेती और 'एलागी' अर्थात पति द्वारा अवहेलित, की आपसी रंजिशों से कथा को गति मिलती है। विडम्बना यह है कि ये कथाएँ स्त्री पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती हैं फिर भी स्त्री-स्वर यहाँ नदारद है। पितृसत्तात्मक मूल्यों को वहन करती ये कथाएँ स्त्री पात्रों का कोरा विभाजन करती है – यदि नायिका है तो आदर्श, त्याग, क्षमा, परम आज्ञाकारिणी है तो दूसरी ओर अपनी अधिकारों, इच्छाओं के प्रति सजग है तो वह क्रूर, कुटनी, खलनायिका है जो प्रतिहिंसा में व्याकुल होकर विक्षिप्त की भांति व्यवहार करती है। जीवन की सारी ऊर्जा नायिका के विरुद्ध षड्यंत्र करने में व्यर्थ करती है। नारी चरित्रों का यह संकीर्ण चित्रण पितृसत्तात्मक शक्तियों को बलवती करती है। 'औरत ही औरत की दुश्मन है' उक्ति को चरितार्थ करती इन लोककथाओं में पुरुष स्वीकृत व्यवहारों का महिमामंडन तथा पुरुष की गलतियों को ओट में छिपाकर स्वतंत्रचेता स्त्री को दंडित किया गया है। 'बूढ़ी आइर साधु' में संकलित अधिकांश लोक कथाओं ('मेकुरीर जियेकर साधु', 'औकुंवरी', 'तेजीमला', 'चिलनीर जिएकर साधु', 'तुला और तेजा') में बहुपत्नीत्व का चित्रण है। एकाधिक पत्नी का होना पुरुष की प्रतिष्ठा, संपन्नता, पुरुषत्व का प्रतीक था लेकिन दूसरी ओर यह स्त्री जीवन को अनिश्चयता, शंका, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या से घेरकर स्याह कर देता है।

उपरोक्त लोककथाओं में जलती-कुढ़ती, क्रूरता के हद तक व्यवहार करती स्त्री पात्रों का चित्रण है लेकिन इन पात्रों के ऐसे रवैये के पीछे छुपे मानसिक स्थिति का संकेत लेशमात्र नहीं है। वर्तमान समय में स्त्री के पास आत्मनिर्भर बनने के अनेक अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन आधुनिकता के आगमन से पूर्व स्त्री आर्थिक व सामाजिक स्तर पर पूर्णतःपुरुष पर निर्भर थी। लोक कथाओं में भी स्त्री के कार्यक्षेत्र को गृहस्थी तक ही सीमित दिखाया गया है। और घर-बाहर दोनों ही स्थान पर आधिपत्य पुरुष का होता है। स्त्री बचपन से ही यह देख-समझकर बड़ी होती है कि सत्ता पुरुष के पास है। उसे जीवित रहना है तो पुरुष के आकर्षण का, प्रेम का केंद्र बने रहना होगा। उसे समाज यही सिखाता है कि पुरुष मुख्य है और स्त्री गौण। पुरुष के प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण स्त्रीत्व का सार भी है और मजबूरी भी। पुरुष बिना वह अस्तित्वहीन है। ऐसी स्थिति में पति प्रेम उसकी एकमात्र पूंजी है और सौतन के आने का अर्थ है उसकी प्रतिष्ठा का धमिल होना, उसका सर्वस्व छीन जाना। अतः
92/320
को चुनौती मान लेना उसकी स

लोककथाओं क 'लागी' पात्र हैं सुखी, समृद्ध है। पति के प्रेम और ऐश्वर्य की एकछत्री अधिकारिणी है। दूसरी ओर 'एलागी' का जीवन दरिद्रता, अवहेलना, अपमान, कष्ट से परिपूर्ण है। ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति चाहे, चाहे स्त्री हो या पुरुष प्रसन्नचित इस अन्याय को सहना नहीं चाहेगा। लेकिन इन कथाओं में संघर्षशील, सक्रिय स्त्री को खलनायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ताकि पाठक की सहानुभूति पुरुष पात्र एवं पुरुषोचित व्यवहार करती निष्क्रिय स्त्री पात्रों के साथ बनी रहे। उन्हें हिंसापूर्ण, क्रूर व्यवहार करते दिखाया गया है ताकि उनकी उदण्डता की आड़ में पुरुष सत्ता का प्रपंच छिपाकर सारा दोष स्त्री के ही मत्थे मढ़ दिया जाए। 'चिलनीर जियेकर साधु' में सात पत्नियों के होने के बावजूद सौदागर नव यौवना चील की बेटी की सुंदरता को देखकर वासना संवरण नहीं कर पाता और उससे विवाह करने का निश्चय करता है। विवाहपूर्व चील से वह कहता है – 'मैं तुम्हारी बेटी को सदा सुखी रखूँगा, कभी दुखी नहीं करूंगा'। क्या पता ऐसे खोखले वादें एक-एक करके उसने

जनप्रिय असमिया लोक कथाओं में चित्रित स्त्री

डॉ. बेबी विश्वकर्मा

सहायक प्राध्यापक, नगाँव गर्ल्स कॉलेज (असम)

सारांश

किसी भी समाज की सांस्कृतिक संपन्नता और विरासत का दर्पण उस क्षेत्र की लोक संस्कृति होती है। लोक संस्कृति प्रत्येक समाज की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अवधारणा की झांकी प्रस्तुत करती है। लोक कथा भी लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। सतत क्रम में प्रवाहित होती ये कथाएँ एक पीढ़ी के अभिज्ञताओं, कल्पनाओं, विचारधाराओं को दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का माध्यम बनती हैं। निरंतर चलायमान समय की गति के साथ मनुष्य की वैचारिक संसार का भी विस्तार होता है। मनुष्य कई प्राचीन मान्यताओं को त्याग नई संरचनाओं का निर्माण करता है। अतएव नए समय के संदर्भ में लोक कथाओं की पुनःव्याख्या समीचीन ठहरता है, ताकि लोक कथाओं की लोक-शिक्षा का उद्देश्य सटीक रहे। लोक कथाओं का विस्तृत संसार असमिया समाज में भी प्रस्फुटित है। अतएव प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य असमिया समाज के जनप्रिय लोककथाओं का पुनर्मूल्यांकन स्त्री केन्द्रित दृष्टि से करना है।

बीज शब्द

लोक संस्कृति, लोक कथा, पुनःव्याख्या, स्त्री, असमिया समाज।

असम अनेक जाति-जनजातियों का संगमस्थल है। इसीलिए इसकी संस्कृति बहुआयामी है। इस प्रदेश में लोक कथाओं का विस्तृत संसार समाहित है जो यहाँ की संस्कृति, जीवन शैली, धार्मिक पारंपरिक विश्वास को दर्शाता है। लोककथा केवल बच्चों को मनोरंजन अथवा नैतिक शिक्षा देने हेतु सुनाए जानेवाले साधारण कथा मात्र नहीं है। शिशुकाल में ग्रहण शक्ति अति तीव्र होती है। लोक कथाओं के जरिए शिशु की सामाजिक कंडिशनिंग की प्रक्रिया शुरू होती है। ये कथाएँ सामाजिक विचारधाराओं का प्रतिबिंब है जिन्हें व्यक्ति आत्मसात करता है। अतएव व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को शिशुकाल से ही प्रभावित करती इन लोक कथाओं का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। यह पड़ताल करना जरूरी है कि लोक कथाओं के जरिए जो स्त्री छवि पीढ़ी दर पीढ़ी प्रस्तुत की जा रही है वह वर्तमान समय में संगत है या नहीं। अधिकांश लोककथाओं के उत्पत्ति का कोई निश्चित स्रोत प्राप्त नहीं होता है। लोककथाएँ एकल व्यक्ति द्वारा निर्मित नहीं होती है। यह एक समाज द्वारा गढ़ी और संशोधित की जाती है।

कहानी की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए अधिक चरित्र जुड़ते हैं, नया अंश जोड़ा जाता है इसीलिए एक ही कथा के भिन्न-भिन्न संस्करण प्राप्त

मानसिक स्थिति का संकेत लेशमात्र नहीं है। वर्तमान समय में स्त्री के पास आत्मनिर्भर बनने के अनेक अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन आधुनिकता के आगमन

अनुक्रम

गान

1. बोलती फिल्मों का उदयकाल और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत -प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या' 13
2. तराना - सदाबहार गायन शैली -प्रो. डॉ.साधना व. मोहोड 19
3 ग्वालियर घराने की गायन शैली: एक विवेचनात्मक अध्ययन -डॉ. मेघना कुमार 25
4 The Sufi Music in India -Dr. Santosh Kumar 29
5 ग्वालियर घरानाः परंपरा एवं बदलाव -डॉ. किरण प्रकाश सावंत 35
6 संगीत सौन्दर्य में बन्दिशों का महत्व -डॉ. रूचि मिश्रा, -डॉ. प्रिया पाण्डेय 39

आतोद्य

7 पूर्वांचल के लोक संगीत में वाद्यों की भूमिका -डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार 47
8 लोक वाद्य नगाड़ा -डॉ0 चित्रा चौरसिया 52
9 सितार वादन में बन्दिशों के विभिन्न प्रकार -डॉ. गौरव शुक्ला 57
10 फर्रूखाबाद घरानाः वंशावली, शिष्य परम्परा एंव वादन शैलीगत विशेषताएं संस्कृति -डॉ. प्रियंका अरोड़ा 59

संस्कृति

11 गुप्तकालीन मूर्तिकला में धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन बोध -प्रो. महावीर सिंह 67
12 कुमाऊँ की सर्वश्रेष्ठ लोकगाथा राजुला मालूशाही-डॉ नीमा कलौनी - डॉ संध्यारानी 72
13 सिख धार्मिक वस्त्रों का परिचय, पंजाब स्थित गुरुद्वारों में प्राचीन वस्त्रों का संरक्षण एवं वर्तमान स्थिति -डॉ. प्रज्ञा पाठक 80
14 Architecture of Kerala Temple theatre-Kutthambalam -Dr. Jyoti singh 86
15 जनप्रिय असमिया लोक कथाओं में चित्रित स्त्री -डॉ. बेबी विश्वकर्मा 91
16 Cultural Heritage of Khasi Folktales; A Study of India's Northeast and its Tradition -Dr. Abhisarika Prajapati 96

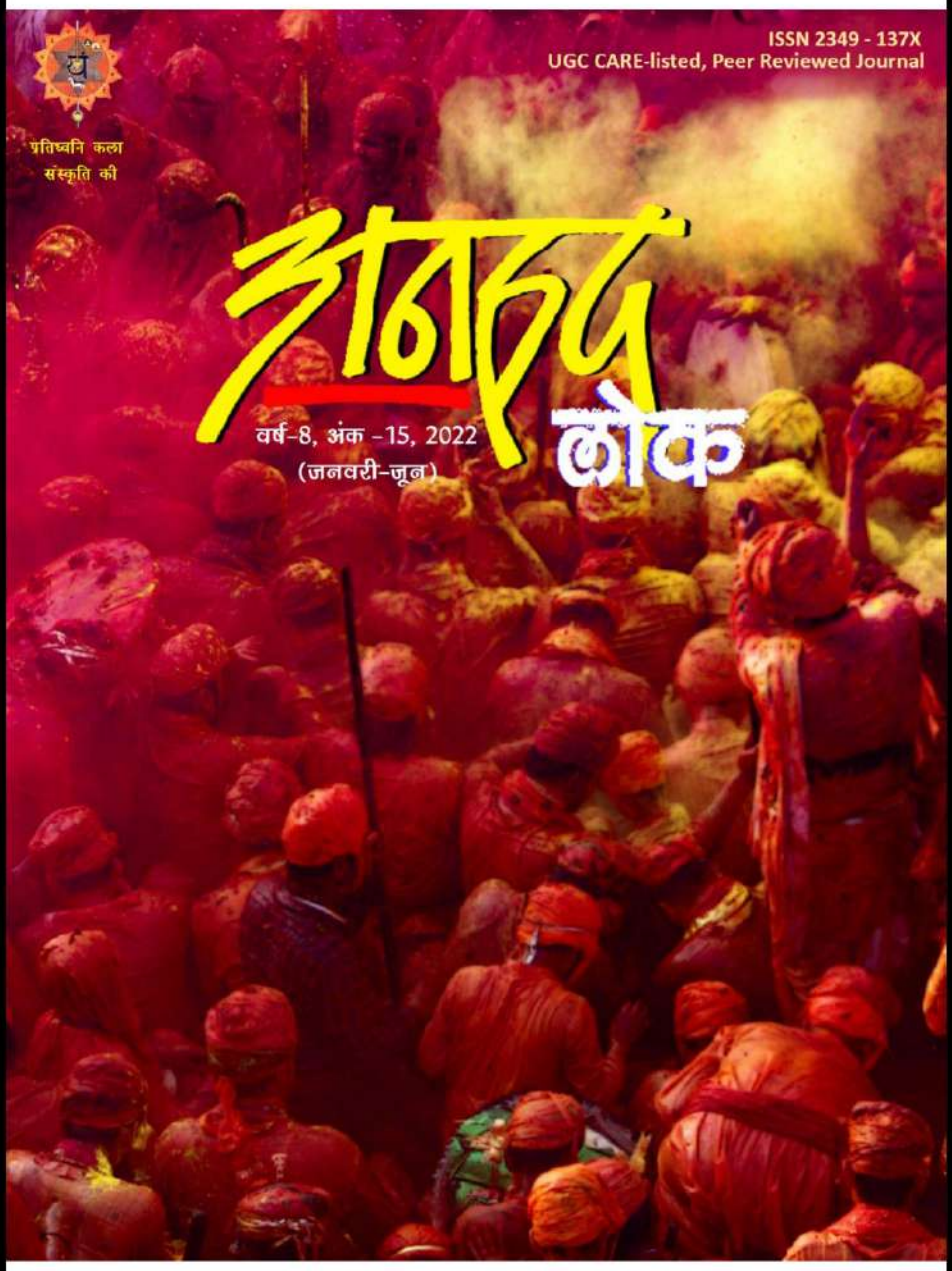

ISSN 2349-137X
UGC CARE-Listed Peer Reviewed

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

वर्ष-8, 2022, अंक-15
(जनवरी-जून)
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक
डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल